INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | JUNE - 2023

शिवमूर्ति के उपन्यासों में दलित चेतना का अध्ययन

सीमा कुशवाहा[1] , डॉ. उर्मिला वर्मा[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

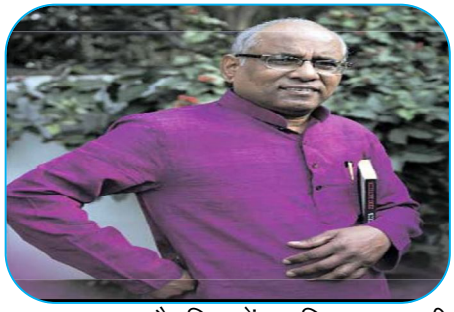

शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्या को इस प्रकार से उकेरा है कि यथार्थ नग्न नृत्य करता हुआ प्रतीत होता है। उनके उपन्यासों में समाज की वह घटनाएं चित्रित है जिनको धनी वर्ग के द्वारा दबा दिया जाता है। वह मानवीय शोषण व्याप्त है जिसकी ओर प्रबुद्ध वर्ग ध्यान नहीं देना चाहता, निम्न जाति की वह लाचारी विद्यमान है जिसको देखकर उच्च जाति मुंह दबाकर हंसकर आगे बढ़ जाती है। ऐसा लगता है कि शिवमूर्ति ने व्यक्ति मात्र की पीड़ा को वास्तविक रूप से अनुभूत किया है और उसे अपनी लेखनी की आवाज और शक्ति देने का प्रयास किया है। शिवमूर्ति का उपन्यास साहित्य मानवीय चिंतन कि वह जलधारा है जिसमें व्यक्ति मात्र की चिंता स्पष्ट दिखाई देती है। उनके साहित्य में सम्मान मनुष्य को विशिष्ट पात्र बनाकर प्रदर्शित किया गया है। अतः यह सत्य है कि शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों के माध्यम से व्यक्ति मात्र को अपनी कलम की शक्ति देकर जातिवाद, सांप्रदायिकता, किसानों की सामाजिक समस्याएं, दलित विमर्श, नारी विमर्श, वर्णव्यवस्था आदि समस्याओं को उजागर किया है और शोषण का विरोध किया है। शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सत्य की प्रतिस्थापना करनी चाही है और असत्य का नाश करने के प्रति सजगता दिखाई है। वह अपने समाज से सारी विसंगतियों को, समस्त समस्याओं को मिटा देना चाहते हैं। अतः वह समाज की कुप्रथा और कुरीतियों को लेकर उनके विरोध में एक नई अलग जगाने चले हैं जिसमें वह कुछ सीमा तक सफल भी हुए हैं।

मुख्य शब्द – उपन्यास, सामाजिक समस्या, दलित चेतना एवं समाज की कुप्रथा।

प्रस्तावना –

दलित चेतना को समझने के लिए आवश्यक है कि उसमें चेतना शब्द के तात्पर्य को समझा जाए। क्योंकि चेतना का विस्तारित विवेचन ही दलित चेतना को आत्मसात करता है। चेतना शब्द का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से है। यदि मनोविज्ञान के अनुसार उसे परिभाषित किया जाए तो अत्यधिक दुष्कर होगा। यह शब्द अपने आप में व्यापक अर्थ को समाहित करता है। चेतना शब्द चेतन से या चेत से बना है, जिसका पर्याय चेतस्से है। संस्कृत भाषा के अनुसार चेतना से तात्पर्य ज्ञान, बुद्धि चेत और जीवन के विभिन्न अर्थों में लिया जाता है। संस्कृत भाषा में चेतना शब्द का अर्थ आत्मा, जीवन, मनुष्य, प्राणी, परमात्मा आदि सभी से है। यह अकर्मक एवं सकर्मक दोनों क्रियाओं में अलग–अलग रूपों में अलग–अलग अर्थों को अभिव्यक्त करता है। अकर्मक रूप में चेतना का अर्थ होश में आना, बुद्धि विवेक से कार्य लेना, सावधान रहना है तो सकर्मक के अनुरूप चेतना शब्द का अर्थ सोच और विचार का दृष्टिकोण रखना है। अंग्रेजी भाषा में चेतना शब्द के लिए

कान्शसनेस शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका व्यापक अर्थ है आंतरिक ज्ञान की प्राप्ति, जागरूकता, चेतना अथवा दर्शनशास्त्र के अनुसार विचारों संकल्पों और अनुभूतियों की आनुषंगिक दशा, स्थिति अथवा क्षमता।

साहित्यकोश के अनुसार, चेतना 'चेतन' मानव की प्रमुख विशेषता है अर्थात् चेतना वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान है। हिन्दी में चेतना शब्द का अर्थ ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, बुद्धि, समझ, होश हवास, स्मृति, याद आदि है। इस प्रकार चेतना शब्द आत्मा और बुद्धि दोनों से सम्बन्धित है। चेतना वह तत्व है जो जीवनधारियों को निर्जीव पदार्थों से अलग करता है, जो मानव को मस्तिष्कीय संचालन प्रदान करता है, जो मानव का उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने में उसकी सहायता करता है। चेतना स्वयं को और अपने आसपास के वातावरण को समझकर उसका मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। चेतना सही और गलत का परिदर्शन है जिसके द्वारा मानव विभिन्न मोड़ों पर खड़े होकर सही का अनुसरण करने के लिए प्रेरित होता है। समाज मानव द्वारा निर्मित होता है। इसमें अनेक प्रकार के उपकरण विद्यमान है, उनमें से कुछ उपयोगी और अनुपयोगी होते हैं। चेतना उपयोगी एवं अनुपयोगी दोनों को पहचानने का काम करती है। चेतना मानव को जीवन में निरंतर प्रगति पथ पर गतिशील रहने की सजगता प्रदान करती है। चेतना मनुष्य को अच्छे और बुरे के लिए सचेत करती है और बताती है कि उसके लिए क्या ग्रहणीय है और क्या त्याज्य है ?

अवचेतना शब्द के साथ दलित शब्द का प्रयोग करने पर उसका अर्थ पूर्णतः बदल जाता है। जब चेतना को दलित के साथ जोड़ा जाता है तो विभिन्न स्वरूप सामने आकर खडे हो जाते हैं। उसको जानने से पूर्व दलित शब्द को समझना आवश्यक है। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दल धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है हिस्से करना, कुचल देना, तोड़ देना आदि। विभिन्न शब्दकोशों में दलित शब्द के अपने अलग–अलग पर्याय हैं, जिसके अनुसार फटना, खंडित होना, चूर्ण कर देना, दल का विकसित होना, टुकड़े करना आदि अनेक रूप सामने आते हैं। संक्षेप में समझा जाए तो दलित शब्द का अर्थ विनष्ट किया हुआ होता है, अर्थात् मसला हुआ, रौंधा हुआ, दबाया हुआ, कुचला हुआ, मर्दित किया हुआ। इस रूप में जिसका दलन और दमन हुआ है जिसे दूसरों के द्वारा दबा दिया गया है, जिसको यातनाएं दी गई है, सताया गया है, जिसको शोषित किया गया है, हतोत्साहित किया गया है, वंचित किया गया है वह दलित है।

डॉ. कुसुमलता मेघवाल ने दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ कुचला हुआ बताया है। इस प्रकार दलित शब्द जब साहित्य के साथ जुड़ा हो तो वह एक ऐसी साहित्यिक धारा में बदल गया की जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति करने लगी। दलित चेतना साहित्य के साथ जुड़कर उन मजलूम व्यक्तियों की आवाज बन गयी जिनका साथ देने वाला कोई नहीं। अतः दलित साहित्य जनता का साहित्य हो गया, जो मूल्यों और आदर्शों की जमीन पर सामन्ती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोश जनित संघर्ष है। ''दलित साहित्य के संदर्भ में प्रसिद्ध, आलोचक राजेन्द्र जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला। सामाजिक स्तर पर जाति भेद के जो शिखर हुए हैं, उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रहा है।''[1] दलित साहित्य के संदर्भ में वरिष्ठ दलित कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि – ''दलित साहित्य भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद को नकारता है तथा पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। दलित शब्द उन्हें सामाजिक पहचान देता है, जिनकी पहचान इतिहास के पन्नों से सदा के लिए मिटा दी गई। जिनकी गौरवपूर्ण संस्कृति ऐतिहासिक धरोहर काल चक्र में खो गईं।''[2] इस प्रकार दलित साहित्य समता का साहित्य है, जो भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

विश्लेषण –

दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य दलितों के उस सम्मान को खोजना है जो कि कुछ रूढ़िवादी, प्रथावादी, निकृष्ट दृष्टिकोण को रखने वाले लोगों के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। दलित साहित्य ऐसे निर्दोष व्यक्तियों की सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियों का अवलोकन है जिनमें दलित व्यक्तियों के सम्मान को पूर्णतः तहस नहस कर दिया गया है। यह साहित्य दलितों की अस्मिता की तलाश में निरंतर जागरूक है और उनका आत्मविश्वास आत्मसम्मान वापस करने के माध्यम से उन्हें सम्मान दिलाने की पहल में अग्रणी है। दलित साहित्य का मुख्य बिन्दु मनुष्य मात्र की रक्षा है। उसे दुःख से, निराशा से, हताशा से, बाहर निकलकर आत्मविश्वास की ललक प्रदान करना है, उसको ऊर्जा प्रदान करना है और साथ ही उसके जीवन में खुशहाली भरना है।

वरिष्ठ लेखकार संजीव जी दलित चेतना के संदर्भ में जीने का शिवमूर्तियाना अंदाज संस्मरण में लिखते हैं कि, शिवमूर्ति के शब्दों में – ''पिछड़ा भी हूँ, भूमिहीन भी और बचपन से सवर्णों की ज्यादती झेलता, भोगता, देखता भी रहा हूँ। मुझसे उपयुक्त व्यक्ति कौन है, या इस दलित उभार को वाणी देने वाला? फिर क्यों में दोयम प्राथमिकता वाली समस्याओं में मगन रहा? सन 68 में तो यह आग ऐसी थी कि छू दो तो जल जाओ। फिर यह नेपथ्य में क्यों इसके अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है कि जिंदगी में कि जैसे–जैसे सुख सुविधा बढ़ती गयी इस आग पर रख पड़ती चली गयी।''[3] इसके बाद ही शिवमूर्ति ने दलित चेतना के उभार को लेकर तर्पण उपन्यास लिखा है।

वर्तमान साहित्य में दलित साहित्य की अपनी अलग पहचान है। कई दलित साहित्यकार सामाजिक चेतना से अंतरंग होकर नये सार्थक आयामों की खोज में जुड़े हैं। विषम भारतीय सामाजिक संरचना के कारण समाज में अनेक शोषण मूलक विकृतियाँ प्रभावी भूमिका निभा रही है। जैसे की हम जानते हैं कि प्राचीन काल से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भारतीय समाज रचना की एक विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वर्ण्यव्यवस्था, ऋग्वेद काल से आज तक किसी न किसी रूप में विद्यमान है। लेकिन ऐसी असमान सामाजिक व्यवस्था के कारण व्यक्ति को अन्त तक जो व्यक्तित्व के उन्नति के लिए आजादी मिलनी चाहिए वह न के बराबर है। दलित साहित्यकार ऐसे व्यक्ति को केन्द्र में रखकर मानवीय संवेदना को अर्थवत्ता प्रदान करता है। अमानवीय, क्रूर, घिनौनी, सामाजिक व्यवस्था की विषमताओं को रेखांकित करते हुए स्वतंत्रता न्याय, बन्धुत्व, समता पर आधारित समाज की संरचना का प्रयास हो दलित लेखन का उद्देश्य है।

एक कवि ने कहा है कि –
'हम धन्य है कि हम इस क्रांतिकारी युग में जन्में हैं।
हम धन्य हैं कि हमारे पूर्व किसी को भी दुःख देने वाले नहीं दिखे थे।
भगवान बुद्ध को मात्र दुःख दिखे थे।
परन्तु हमें दुःख और दुःख देने वाले दोनों ही दिखे हैं।

यह काव्य पंक्तियां कथाकार शिवमूर्ति की आवाज का पूरी तरह से समर्थन करती है।

शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में मानवीय संवेदनाओ को अपने कथ्य का विषय बनाया है। उन्होंने एक तरफ जहां त्रिशूल उपन्यास में सांप्रदायिकता और जातिवाद के विरोध को अपनी वाणी दी वहीं तर्पण उपन्यास में दलित चेतना को उजागर किया है। तर्पण उपन्यास के माध्यम से उन्होंने समाज में निरंतर दलितों पर हो रहे अत्याचार को, अन्याय को, उनके दुःख और दर्द से भरे हुए जीवन को न केवल निकट से देखा है बल्कि उसे अनुभूत भी किया है। उनके हृदय की यही संचित वेदना उनके उपन्यास 'तर्पण' में अभिव्यक्त हुई है वास्तविकता यह है कि साहित्यकार जब साहित्य का सृजन करता है तब वह एक प्रसूता की पीड़ा को अनुभूत करता है, उसके बाद जो साहित्य सृजन होता है। वह उन पीड़ामइ भावनाओं की करूणामई रागनी से उद्घाटित होता है। शायद इसीलिए शिवमूर्ति ने वर्ण समाज के जुल्मों से त्रस्त दलित जाति को उनसे मुक्त कराने के लिए अपनी आवाज उठाई और सदियों से चले आ रहे अत्याचार और अनाचार की धारा को सुखाने के लिए तर्पण उपन्यास रूपी उष्मा को समाज के सामने प्रस्तुत किया।

शिवमूर्ति की दलितों के प्रति चेतना के संदर्भ में श्रवण कुमार मीना शिवमूर्ति के शब्दों में लिखते हैं कि, ''अपने प्रारंभिक रूप में इसे भूस्वामियों और दबंग आतातायी स्वणों में असहयोग, उसका काम करने से इनकार करने, दूसरे दौर में उसके अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध में उठ खड़े होते, अपने समाज में इस विरोध की चेतना पैदा करने तथा अंतिम दौर मे सत्ता प्रतिष्ठा पर कब्जा करने के रूप में देख सकते हैं।''[4]

वास्तविकता तो यह है कि तर्पण भारतीय समाज में सहस्राब्दियों से शोषित, दलित और उत्पीड़ित समुदाय के प्रतिरोध एवं परिवर्तन की कथा है। इसमें एक तरफ कई–कई हजार वर्षों के दुःख, अभाव और अत्याचार का सनातन यथार्थ है तो दूसरी तरफ दलितों के स्वप्न, संघर्ष और मुक्ति चेतना की नई वास्तविकता। तर्पण में न तो दलित जीवन के चित्रण में भोगे गये यथार्थ की अतिशय भावुकता और अहंकार है, न ही अनुभव का अभाव। उत्कृष्ट रचनाशीलता के समस्त जरूरी उपकरणों से सम्पन्न तर्पण दलित यथार्थ को अचूक दृष्टि सम्पन्नता के साथ अभिव्यक्त करता है।

गांव में ब्राह्मण युवक चन्दर, युवती रजपतिया से बलात्कार की कोशिश करता है। रजपतिया के साथ की अन्य स्त्रियों के विरोध के कारण वह सफल नहीं हो पाता। उसे भागना पड़ता है। लेकिन दलित, बलात्कार किये जाने की रिपोर्ट लिखाते हैं। 'झूठी रिपोर्ट' के इस अर्द्धसत्य के जरिए शिवमूर्ति हिन्दू समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था के घोर विखंडन का महासत्य प्रकट करते हैं। इस पृष्ठभूमि पर इतनी बेधकता, दक्षता और ईमान के साथ अन्य कोई रचना दुर्लभ है। समकालीन कथा साहित्य में शिवमूर्ति ग्रामीण वास्तविकता के सर्वाधिक समर्थ और विश्वसनीय लेखकों में है। तर्पण इनकी क्षमताओं का शिखर है। रजपतिया, भाईजी, मालकिन, धरमू पंडित जैसे अनेक चरित्रों के साथ साथ अवध का एक गांव अपनी पूरी सामाजिक, भौगोलिक संरचना के साथ यहां उपस्थित है। गांव के लोग बाग, प्रकृति, रीति–रिवाज, बोली बानी सब कुछ शिवमूर्ति के जादू से जीवित जाग्रत हो उठे हैं। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि उत्तर भारत का गंवई अवध यहाँ धडक रहा है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है तर्पण ऐसी औपन्यासिक कृति है जिसमें मनु की सामाजिक व्यवस्था का अमोघ संधान किया गया है। एक भारी उथल–पुथल से भरा यह उपन्यास भारतीय समय और राजनीति में दलितों की नई करवट का सचेत, समर्थ और सफल आख्यान है। शिवमूर्ति आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने सामाजिक धरातल से जुड़कर अपनी लेखनी को स्वरूप देने में अत्यधिक निपुणता दिखाई है। उनका साहित्य सामाजिक धरातल से जुड़कर चलने वाला साहित्य है, जिसमें मानव मात्र की भावनाओं को, उसकी संवेदनाओं को, उसकी वेदनाओं को, मर्म को उकेरा गया है। उन्होंने जन मात्र की उस अभिव्यक्ति को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया है जिसे समाज के सामने आने में युग लग जाते हैं। सत्य के प्रतिष्ठापरक शिवमूर्ति का साहित्य मानव मात्र की पहचान है। इस पहचान को बनाने की जद्दोजहद के कारण ही कभी उपन्यास तो कभी कहानी को उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। यथार्थ में उनका रचना संसार अदभुत है, निराला है।

संदर्भ –

[1] प्रोफेसर श्रीराम शर्मा – समकालीन हिन्दी साहित्य विविध विमर्श, पृष्ठ 74
[2] रविन्द्र कालिया – नया ज्ञानोदय, पृष्ठ 88
[3] डॉ. श्रवण कुमार मीणा – दलित साहित्य और सामाजिक संदर्भ, पृष्ठ 89
[4] शिवमूर्ति – तर्पण, पृष्ठ 10